"... मुलाकात हो गई!"

बा.शे. दिवाकर,

''ब्लू लाइन' बस आई, मैं धड़धड़ाता, आव देखा ना ताव, सीधा अगले दरवाजे से अंदर पदार्पण कर गया। कंडेक्टर लौंडे ने अंदर घुसते ही मुझे घेर, मेरा गन्तव्य स्थान जान कर फटाफट टिकट फाड़ा और मेरे हाथ में थमा कर पैसों के लिए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया।

कनखियों से कोने में देखते, जेब से पैसे निकालते-निकालते ही मैं अपने साथ की खाली, कोने वाली सीट पर विराजमान हो गया। कंडेक्टर पैसे लेकर आगे बढ़ गया। आपाधापी में क्रियान्वित हुए इस सारे क्रियाकलाप से थोड़ा घबराया, मैं, सिर नीचा किए चुपचाप कुछ क्षण, शांत अपने को संयत करता बैठा रहा।

तभी अचानक मेरे साथ की सीट से घंटियों की खनक की याद कराती एक सुरीली आवाज कान में पड़ी, ''पहचाना नहीं!'' मैंने मुड़कर देखा और साथ बैठी मध्यम उम्र की महिला को पहचानता थोड़ा चौंक गया। मेरे समक्ष साक्षात 'फ्लूड' बैठी थी!

आप ठीक समझे जनाब 'फ्लूड' मतलब उसी सफेद से रंग के तरल पदार्थ से है जिसके प्रयोग द्वारा लिखित या टंकित कागज पर से गलती को मिटा कर दुबारा ठीक किया जा सकता है।

बस में जोर-जोर से मुहम्मद रफी का पुराना गाना बज रहा था, ''कल रात जिन्दगी से मुलाकात हो गई . . .'' आप घबराइए मत जनाब! इस बस के पूरे मुलाकात प्रकरण में मेरे रोमांस या मेरी जिन्दगी का कहीं कोई 'बोर' लेखा-जोखा प्रस्तुति नहीं है। (वो तो घर बैठी मेरे लौटने का इंतजार कर रही थी तब) मेरी मुलाकात तो किसी और की यानी कि 'फ्लूड' से हो गई थी और फ्लूड यानी कि ''टीना'' वो जीवन का ऐसा समय था जब सभी कुछ मजाक सा लगता था। आसपास का सभी कुछ स्वयं के अहम् के समक्ष आसान और निचली श्रेणी का प्रतीत होता था। लगता था सभी कुछ मुझसे ही क्रियान्वित है, बस मैं ही मैं हूं! शायद जवानी इसी का नाम है।

उम्र रही होगी कोई इक्कीस-बाइस वर्षों की और सरकारी नौकरी नई-नई लगी थी और ऑफिस था आई. टी.ओ. पर 'वायी शेप' भवन में परन्तु घर से पर्याप्त खा पीकर चलने के बावजूद भी आफिस पहुंच जाता था वापस कनॉट प्लेस 'कॉफी हाउस' में कॉफी पीने के पश्चात् ही।

हम पांच सात हम उम्र दोस्त जो कि सभी नए-नए सरकारी कार्यालयों में एक आध वर्ष के अंदर ही नौकरी पर लगे थे। सभी निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों से ताल्लुक रखते थे और मदनगीर के निवासी थे। सभी करीब-करीब एक जैसी ही सोच रखते थे, मस्तमौला थे और साथ ही अपनी नई-नई वित्तीय आजादी का पूरा-पूरा लुत्फ उठाने का नेक इरादा भी रखते थे।

किसी को आपस में अवगत् कराने की आवश्यकता नहीं होती थी कि इस शुक्रवार कौन सी नई फिल्म कौन से सिनेमा घर पर लगी है जहां सबको ऑफिस के पश्चात् बिना कहे ही एकत्रित होना होता था, फिर चाहे सिनेमाघर पारस हो, उपहार, चाणक्य या अर्चना।

साथ ही असली मजा वहां पहुंचकर एक दूसरे को ढूंढने का ही केवल नहीं होता था बल्कि पहले दिन का छः बजे का शो होने के कारण ना उपलब्ध टिकटों को एक-एक कर जैसे, वैसे, कैसे भी पाने और फिर सिनेमा हाल में अंदर जा कर इधर-उधर बिखरे सीट नम्बरों को एक साथ इकट्ठा करवाने का भी होता था।

जब फिल्म नहीं देखनी तो हर शाम ऑफिस से वापस घर पहुंच कर, खाने इत्यादि से निवृत हो कर

सभी का मुख्य खानपुर चिराग दिल्ली सड़क पर नए-नए बने डी. डी. ए. फ्लैट्स के सामने इकट्ठा होना, लम्बी सैर पर जाना या दिन भर की मुख्य-मुख्य गप्पें एक दूसरे को बढ़-चढ कर सुनाना भी दैनिक दिनचर्या का एक प्रमुख करतब था।

मुख्यतम् था सुबह-सुबह, अपना-अपना 'लंच बाक्स' हाथों में उठाए या भिन्न-भिन्न प्रकार के थैले कंधों पर उठाए, आठ बजे तक बस स्टाप पर इकट्ठे हो जाना। उस जमाने में मदनगीर के लिए एक ही बस चलती थी, छप्पन नंबर, जो कनाट प्लेस से आरंभ होकर खानपुर तक समाप्त होती थी और अधिकतर खानपुर से ही जो कि मदनगीर से डेढ़ किलो मीटर आगे था, भर जाया करती थी।

हम सभी ने डी.टी.सी. का तीस रुपए वाला 'आल रूट पास' बनवा रखा था जबकि आफिस जाने आने के लिए महीने के इससे कम पैसे ही खर्च होते थे परन्तु नई वित्तीय स्वतंत्रता का ये भी एक शाही पहलू था कि ऑल रूट पास बनवाओ और मौज से बैठकर जिस मर्जी बस में सफर करो।

उसी तीस रुपए वाले ऑल रूट पास का एक फायदा और भी था कि मदनगीर से उल्टा छप्पन नंबर बस में बैठ कर खानपुर जाओ और वहां ना उतर कर ठाठ से सीटों पर जमे रहो और आरामदेह वापस सफर करो, वरना खानपुर से शुरु होकर मदनगीर तक आते-आते ही बस में पैर रखने तक की जगह पाना कठिन होता था।

इस छप्पन नंबर बस, ऑल रूट पास और खानपुर जाकर बैठकर वापस आने का पूरा प्रकरण ब्यान करने का कोई औचित्य नहीं होता यदि इस सब का मेरी कहानी और इसके पात्रों से सीधा संबंध ना होता।

धृष्टता की सीमा को छूती बात बताने से पहले ही क्षमा मांग लेना ही शायद ठीक होगा क्योंकि ऑल रूट पास से आरामदेह सफर के अलावा ''ऑल रूट पास'' बनवाने का एक और भी छुपा हुआ कारण था।

खानपुर से हम छः सात हमसफर दोस्त केवल स्वयं बैठकर ही नहीं आते थे अपितु साथ की छः-सात सीटों को खाली घेर कर भी लाते थे।

आप पूछेंगे, ''खाली सीटें क्यों भला!'' जनाब यही वो माफी वाली धृष्ठ बात छुपी है . . . वो खाली सीटें आगे बस स्टाप से बस में चढ़नें वाली हम उम्र, परिचित या अपरिचित कोमलांगी कन्याओं के लिए सुरक्षित रखी जाती थीं ताकि किसी भी मित्र की मित्र असुविधा में खड़े रहकर सफर ना करें।

कई बार एक साथ कन्याएं अधिक आ जाने के कारणवश उन्हें दो की सीट पर अपने साथ तीन में स्थापित कर दिया जाता था या बिल्कुल उठकर पूरी सीट दे दी जाती थी। कन्या को आधी सीट या पूरी सीट की सुविधा उसके अपने दोस्ताना, सौहार्दपूर्ण बर्ताव के अनुपात में तय किया जाता था।

हम मित्रों में एक अत्यधिक मृदुभाषी तमिल नवयुवक भी था जो कि कहीं से भी दक्षिणवासी नहीं प्रतीत होता था। साधारण तौर पर कुछ पक्का या काफी काले रंग और भारी-भारी मूछों (बेशक दर्शनीय) वाले अधिकतर दक्षिणवासी नवयुवकों से वो सर्वथा भिन्न था।

उसके मूंछ विहीन गोरे, सौम्य 'क्लीन शेव्ड' मुखार-बिन्द की शोभा देखते ही बनती थी। ऊपर से पक्के पंजाबी युवकों के समान बिना तमिल का एक भी शब्द उच्चरित किए उसकी बातचीत उसे सभी से कुछ अलग ही खड़ा किए रखती थी। उसकी कोई कन्या मित्र भी नहीं थी और नाम था 'राजन एम.'।

उन सभी कोमलांगी कन्याओं में एक ऐसी भी थी जिसका कभी बैठने का नंबर नहीं आ पाता था। कोई उसे अपने साथ बैठाकर राजी नहीं था क्योंकि वो अत्याधिक साधारण रंगरूप की थी। मुश्किल से पांच फुट का कद, अनुपात से कुछ भारी शरीर, गोल चेहरा, गोल आंखें, काले बालों की चोटी और कुछ गहरा रंग लिए बिल्कुल रूखा सा चेहरा, जिस पर कुछ समय पूर्व ही छुटकारा पाए गए मुहासों के निशान भी यहां वहां विराजमान थे।

पहले ही दिन उसे देखते ही राजन एम. के मुंह से बेसाख्ता निकल गया था, ''फ्लूड'' सच ही लगता भी ऐसा ही था कि स्वयं परमात्मा को भी बेदिली के मंजर में ऐसा रूखा, खुरदुरा चेहरा बना देने के पश्चात्, पछतावे सहित, स्वभूल सुधार हेतु 'करेक्शनल फ्लूड'

का प्रयोग कर चेहरे को थोड़ा सौम्य बनाने का प्रयास करना पड़ गया था। लड़की सिंधी थी, सरकारी नौकरी थी और नाम था टीना। साथ बैठा कर बेशक कोई राजी नहीं था उसे परन्तु लेखा जोखा उसके घर के पते सहित उसका भी हम सभी को अन्य सभी कन्याओं के विवरण सहित विदित था।

सो हुआ कुछ यूं कि उस दिन सभी दो की सीट पर हम सभी अपनी-अपनी 'मित्रताओं' के साथ तीन-तीन बैठे थे सिवाय राजन के। हम सभी ने देखा कि रोज की तरह टीना हमारी सीटों के समीप आकर सीट की रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गई और किसी ने भी उसको सीट पेश नहीं की । ऊपर से कंधे पर लटके पर्स के अलावा, उसके हाथ में उस दिन कुछ अतिरिक्त किताबें भी थीं जो कि संभाले नहीं संभल पा रही थीं।

उसने सभी की ओर काफी अनुनयपूर्ण निगाहों से ताका परन्तु हम में से किसी ने भी उसे सीट नहीं दी अपितु सबने कनखियों से 'राजन एम.' की ओर इशारा कर दिया क्योंकि हम सभी में से केवल वही दो बैठे थे बाकी सभी दो की सीट पर तीन बैठे थे।

अंततः टीना ने नजरों की अनुनय असफल होते देखकर सीधे मौखिक शाब्दिक वार किया, ''प्लीज! मेरी किताबें तो आप कम से कम पकड़ ही सकते हैं ना!'' राजन ने कुछ चौंक कर टीना की ओर देखा, फिर हम सभी के शरारत पर उतारू चेहरों की ओर और फिर जैसे चिढ़कर ना केवल टीना की किताबें ही पकड़ लीं अपितु थोड़ा खिसक कर टीना को अपने साथ भी बैठा लिया।

केवल कुछ ही क्षण वे दोनों हिचकते से चुपचाप बैठे रहे उसके पश्चात् पता नहीं उन दोनों में क्या-क्या बातें होती रहीं पता ही नहीं चला। बस केवल बीच-बीच में बारंबार टीना की घंटियों के समान खनखती हंसी के मृदु, मंद स्वर अवश्य ही सुनाई देते रहे। रास्ते में कुछ व्यवधान की वजह से उस दिन बस काफी देर से कनाट प्लेस पहुंची, सो सभी जल्दी-जल्दी अपने गन्तव्य को भाग लिए बिना राजन से कुछ पूछ-ताछ किए।

रात को सड़क पर घूमने के लिए घर से बाहर निकलते सभी के मस्तिष्क में केवल यही विचार था कि राजन आखिर 'फ्लूड' से ऐसी क्या बातें कर रहा था इतने घुट-घुट कर। सभी वहां पहुंच गए थे अपने राजमर्रा के पूर्व निर्धारित स्थान पर परन्तु राजन करीब बीस मिनट तक हमें प्रतीक्षा करवाने के पश्चात् वहां आया, कोई खास बातचीत भी नहीं की बस कुछ खोया-खोया सा लगता रहा।

उसके पश्चात् दूसरे दिन राजन ने बस में स्वयं ही उठकर टीना को पूरी सीट दे देनी चाही परन्तु टीना उसका कंधा दबाती उसे बैठे रहने का इशारा करती स्वयं भी उसके साथ ही थोड़ी सी सीट पर बैठ गई फिर ये रोजमर्रा का कार्यक्रम बन गया और इस प्रकार टीना बिना बुलाए मेहमान की तरह हमारे गैंग में जबरदस्ती शामिल हो गई।

कुछ दिनों पश्चात् एक दिन हम सभी के पूछने पर राजन ने नकली गुस्सा दिखाते कहा, ''सालों! एक तो जबरदस्ती उसे मेरे साथ बैठा दिया ऊपर से पूछते हो हम दोनों घुट-घुट कर क्या बातें करते हैं!''

दूसरे दिन कहा, ''बातें? कैसी बातें . . . वो अपने आफिस के बारे में बता रही थीं और मैं अपने . . . बस! और कुछ नहीं!''

तीसरे दिन तो बाहर घूमने आया ही नहीं घर पूछने पर पता चला कि अभी ऑफिस से वापस नहीं आया है।

चौथे दिन नदारदी का कारण पूछने पर उत्तर मिला, ''कल? . . . कल तो शाम को टीना अचानक मुझे ऑफिस के बाहर मिल गई और हम दोनों कॉफी हाउस चले गए . . . और? .. . और क्या?'' . . . मुझे क्या बेवकूफ समझा है जो मैं 'फ्लूड' को कॉफी पिलाउंगा . . . नहीं यार पैसे उसी ने दिए थे!''

पांचवें दिन खोया-खोया सा था अल्पतम् वार्तालाप सहित। छठे दिन मैंने उसे कहा, ''मैं तुझे फ्लूड के बारे में कुछ बताना चाहता हूं . . . '' मेरी बात समाप्ति पूर्व ही झटका कर दी गई, ''मैं तुम सभी को कुछ दिखाना चाहता हूं!'' कहते उसने एक डायरी अपने हाथ में पकड़े ही पकड़े हमारी निगाहों के सामने हवा में लहरा दी।

ध्यानपूर्वक देखने पर पाया गया कि ऊपर टीना का नाम लिखा था। सभी ने चाहा कि वो हमें भी डायरी

पढ़कर सुनाए परन्तु उसका उत्तर था, ''मुझे टीना के बस से उतर जाने के पश्चात् नीचे गिरी पड़ी मिली थी . . .'' फिर जैसे शिक्षा दी, ''किसी की व्यक्तिगत डायरी कभी पढ़नी नहीं चाहिए . . . कल लौटा दूंगा बस!'' इससे अधिक उसने मेरी एक नहीं सुनी।

सातवें दिन उसके आते ही हमने झड़ी लगा दी, ''क्या हाल है तेरा और तेरी 'फ्लूड' का . . . और वो डायरी? . . .'' उसने जैसे थोड़ा शर्माते हुए बात काट दी, ''यार! अब उसे फ्लूड'' ना कहने से नहीं चलेगा क्या? . . . ''थोड़ा रुक कर, ''यार? वो सच में बड़ी अच्छी और शरीफ लड़की है . . .।''

''परन्तु शुरू में तो कहना तूने ही किया था ना . . . अब क्या हुआ . . .!'' मैंने कुछ शरारत से पूछा।

''मना भी तो आज में ही कर रहा हूं! हम सभी के बारे में, मेरे बारे में वो इतने अच्छे विचार रखती है और हम उसके बारे में इतना गलत बोलते हैं . . .'' फिर कुछ रुककर जैसे मन ही मन कुछ द्वंद शांत कर रहा हो, ''बस आगे से सीधा नाम केवल . . . कोई उपनाम, कोई 'फ्लूड', ब्लूड नहीं चलेगा . . .।''

फिर मेरी ओर अत्यधिक गहरी नजरों से देखते, ''यार शेखर! वो सच मुझे बहुत प्यार करती है!''

''अबे! तुझे उसने स्वयं बताया है क्या! . . .'' मैंने टोका, प्रत्युत्तर में, ''नहीं मैंने उसकी डायरी में पढ़ा था . . .'' कहते-कहते वो रुक गया जैसे शर्मसार हो उठा था। मैंने कुछ और पंगा लेते कहा, ''परन्तु किसी की व्यक्तिगत डायरी तो . . .'' उसने शर्माते मेरी बात काट दी, ''कभी नहीं पढ़नी चाहिए! मुझे पता है यह उपदेश मैंने ही दिया था! . . . और मैं टीना को डायरी बिना पढ़े ही लौटा भी देना चाहता था परन्तु जाने क्यों अपने आपको डायरी पढ़ने से रोक नहीं पाया . . .'' कुछ क्षण शून्य में ताकने के पश्चात्, ''शायद अच्छा ही हुआ वरना वो मुझे कुछ कहती नहीं और मैं उसकी अंतरंग भावनाओं से अछूता ही रह जाता!''

और आठवें दिन उसने हम सभी के लिए समस्या खड़ी कर दी, ''मैं टीना से शादी करना चाहता हूं . . . पर वो कहती है कि उसके घर वाले नहीं मानेंगे!'' हम भौचक्के रह गए थे। ऐसा लगा जैसे हम समय से पहले ही परिपक्व हो गए थे । अचानक ही और राजन केवल बाइस वर्ष का हमारा हम उम्र मित्र ना होकर अचानक ही हमारे स्वयं के जिद्दी बच्चे में तबदील हो गया था जिसे कैसे भी समझा बुझा कर हमें इस विवाह से बचाना था।

''तू बेवकूफ! इतना देखने में अच्छा है . . . तुझे कोई भी अच्छी लड़की मिल जाएगी . . . '' मेरी बात कट गई, ''वे भी तो अच्छी लड़की है . . . उसे भी तो ओर बहुत से अच्छे लड़के मिल जाएंगे!''

मैंने फिर मजाक उड़ाते प्रयास किया, ''अबे पगले! सिंधियों में बहुत सारा दहेज देना पड़ता है इसीलिए वो तुझसे प्रेम विवाह कर फायदा उठाना चाहती है . . . अपने मां बाप का पैसा बचा कर . . . ।''

मेरी बात फिर काट दी गई, ''मुझे भी तो फायदा है . . . मेरे भी तो पीछे तीन-तीन भाई और दो बहने हैं ब्याहने के लिए . . . मां बाप की इकलोती, नौकरी वाली पत्नी मुझे भी तो सहारा देगी, उसके पीछे तो और कोई बंदिश है ही नहीं ना! सो मां-बाप के पश्चात् सभी कुछ टीना का ही तो होगा . . . ''

''अच्छा! तू तो बड़ा शातिर है यार, तो तू टीना के मां बाप का फ्लैट हथियाने के लिए उससे विवाह करना चाहता है और . . .'' और का मोका ही नहीं मिला, मैं आगे-आगे और राजन सड़क से पेड़ की डंडी उठाए मेरे पीछे-पीछे भाग लिया।

कुछ दूर जाकर आखिर राजन ने मुझे पकड़ ही लिया और मेरे चेहरे पर लक्षित शरारत देखकर बड़े संजीदा भाव से बोला, "ऐसा फिर कभी मत कहना . . . मैं सच ही टीना को बहुत प्यार करने लगा हूं . . . इतना कि उसके हृदय की सच्चाई और सुन्दरता के आगे उसका बाहरी रूप-रंग सब गौण हो जाता है!'' उसकी आवाज में निहित सच्चाई, निष्कपटता, ईमानदारी को भांपकर हम सभी मित्र चुप रह गए थे।

मजाक का समय समाप्त हो चुका था सो अंततः एक शुभ दिन देखकर हमी लोग टीना के मां-बाप के पास दोनों के विवाह का प्रस्ताव लेकर गए और उसके पिता ने भी हम चारों पांचों की उम्र चौब्बीस पच्चीस से अधिक ना आंकते हुए मजाक सा ही किया, ''आप में से विवाह कौन करना चाहता है?''

हमने अपनी गलती महसूस की क्योंकि हम राजन को घर के बाहर ही छोड़ गए थे सो कहा, ''कोई भी नहीं!'' वो थोड़ा भड़क गए, ''क्या मजाक है! . . . तुम में से राजन कौन है?'' मैंने आगे बढ़कर थोड़ा बात संभालते कहा, ''सर! वो बाहर खड़ा है . . . आप यदि इजाजत दें तो अंदर आए।''

''और तुम सब तो जैसे मेरी इजाजत और खुशी से ही मेरे घर आए हो . . . उसे भी बुला ही लो . . .'' कहते टीना के पिता ने आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया काफी गुस्से के साथ। सामने खड़े राजन का सुन्दर गोरा मुखारबिन्द देखकर उनकी बोलती सी जैसे बंद हो गई और ऊपर से तब तक उसने झुक कर, साक्षात दंडवत् उनके पैर छू लिए कहा, ''पापा! नमस्कार! . . . पसंद करें या ना करें . . . मुझे आशीर्वाद अवश्य ही प्रदान करें!''

टीना के पिता का चेहरा सहसा खिल सा उठा और उन्होंने हाथ पकड़कर राजन को अंदर बुला लिया। तब कहीं जा कर हम सभी की ऊपर अटकी सांस नीचे वापस आ पाई थी। पीछे मुड़कर देखा और पाया कि टीना की मां ही नहीं उनके पीछे खड़ी स्वयं टीना भी शरारतन राजन को आशीर्वाद प्रदान कर रही थी।

. . . फ्लूड अर्थात् टीना के प्रश्न का उत्तर, अपने ही ख्यालों की दुनिया में खोए, मैंने अब तक भी नहीं दिया था और अनचाहे ही अतीत में जाने कितनी दूर तक चक्कर लगा आया था, सो कहा, ''नमस्ते! . . . मैं भला तुम लोगों को कैसे भूल सकता हूँ, बेशक जल्दी-जल्दी ना भी मिलना हो पाता हो।''

इसके पश्चात् हम दोनों काफी देर तक एक दूसरे के बारे में, परिवार इत्यादि के बारे में पूछताछ करते रहे, फिर अचानक जैसे कुछ चुप्पी सी लग गई। काफी देर पश्चात् वो अचानक बोल उठी, '' आप लोगों ने शायद कभी सोचा भी नहीं होगा कि ये विवाह कभी सफल रह पाएगा . . . '' मैंने प्रतिरोध में जैसे हाथ उठाया परन्तु मेरे चेहरे पर लक्षित हिचक को वो जैसे भांप गई थी, ''आप लोग ही क्या मैं स्वयं भी आश्वस्त नहीं थी इस बारे में और शेखर भाईसाहब मैं ही जानती हूं कि मैं कैसे-कैसे रास्ते तय करती अपने परिवार को संभाल पाई हूँ . . . वरना ये इतने आकर्षक व्यक्तित्व के धनी और में इतनी साधारण . . . ''

''संभाल लेने में तो आप शुरू से ही काफी चतुर हो!'' मेरी बात से टीना ने मेरी ओर बड़ी गहरी दृष्टि से ताका जैसे मेरी मंशा भांपना चाहती हो, फिर, ''आप भाई साहब ऐसा क्यों कह रहे हैं?''

''मैंने टीना! तुम्हें अपनी डायरी जान बूझ कर राजन की तरफ गिराते देख लिया था . . .'' वो मेरी ओर देख रही थी एक टक जैसे बात समझ नहीं पाई थी, ''याद है? . . . वही डायरी जिसकी बदौलत तुम दोनों का विवाह संभव हो पाया था!''

कुछ क्षण वो चुपचाप बैठी रही मुंह नीचा किए फिर थोड़ा शरारतन मुस्कुराते पूछा, ''तो शेखर भाईसाहब आपने इन्हें बताया क्यों नहीं? आप तो इनके परम मित्र थे ना?''

''बस नहीं बताया! मुझे शायद तुम्हारी ईमानदारी छू गई थी . . . साथ ही ऐसा भी लगा कि तुम मन की बहुत अच्छी थीं और वो राजन और आपके बीच का मामला था और उसमें किसी तीसरे के दखल की गुंजाइश ही कहां थी!'' मैंने उत्तर दिया।

''आपके विश्वास मत के लिए शुकरगुजार होने के साथ ही मैं कहना चाहती हूं कि . . . लड़के . . . मेरा अभिप्राय है पुरुष अधिकतर घोड़ों के समान उच्छृंखल और जल्दी में हाथ में आने वाले नहीं होते . . .'' मेरी ओर ताकती शरारती मुस्कुराहट सहित, ''आप भी पुरुष हैं पर मेरी बात का बुरा न माने, ये केवल हम महिलाएं चाहें मैं हूं या आपकी वो, मेरी भाभी जी ही केवल समझ पाती हैं कि पुरुषों को कैसे अपना बनाए रखा जाए और इसके लिए उन्हें क्या-क्या नहीं करना पड़ता, परमात्मा ही जानता है . . .'' टीना काफी उत्तेजित लग रही थी।

''उस समय जैसे एक धुन सी लग गई थी कि राजन जी को पाना ही था . . . बस! फिर चाहें वो डायरी बेशक अपने प्रणय निवेदन सहित चुपके से जान बूझकर उनके पैरों के पास बस के फर्श पर ही क्यों ना गिरा देनी पड़े। . . . आप क्या जानेंगे कि वो रात मैंने कैसे-कैसे डर में गुजारी थी। ये पता ही नहीं था कि वो उस डायरी को पढ़ेंगे भी नहीं और यदि पढ़ेंगे तो क्या मुझे स्वीकार कर पाएंगे या कि मैं दुत्कार दी जाऊंगी . . . बस!''

अपनी बात कह कर टीना जैसे आवेश के जोर से निढाल सी हो गई थी। बस का सफर भी करीब-करीब समाप्ति पर था तभी मुझे थोड़ी शरारत सूझ उठी, ''और यदि अब मैं राजन को सच्चाई से अवगत् करा दूं तो?''

टीना का उम्र की गरिमा से करीब-गरीब सुन्दरता की दहलीज पर पहुंच गया चेहरा एक बार फिर खिल सा उठा और मैं सोचने पर बाध्य हो गया, ''अरे इसे हम 'फ्लूड' यूंहि कहते थे, देखने में इतनी बुरी भी नहीं है''।

आवाज की घंटियां एक बार फिर खनखना उठीं, ''आपको तकलीफ नहीं उठानी होगी शेखर भाईसाहब! मैंने सुहागरात वाले दिन पहला काम यही करते हुए इन्हें सब कुछ सच बता दिया था और मेरी साफ दिली से ये अत्यंत प्रसन्न हुए थे . . . और इन्होंने मुझे यह भी बता दिया था कि आप लोग और ये स्वयं मुझे 'फ्लूड' कहते थे . . .।''

अब शर्मिंदा होने की बारी मेरी थी, मैं तो जैसे रंगे हाथों टीना द्वारा पकड़ लिया गया था। मैंने डरते-डरते टीना की ओर दृष्टि उठाई और उसके क्षमा प्रदायिणी दृष्टि ने जैसे मुझे आश्वस्त कर दिया।

''और भाईसाहब मैं भली प्रकार जानती हूं कि प्रत्येक स्त्री पुरुष के जीवन में कुछ ना कुछ छुपाने योग्य अवश्य ही होता है और ये भी सत्य है कि यदि रोजमर्रा की प्रत्येक बातें एक दूसरे को अक्षराक्षर यदि बता दी जाएं तो पूरे समय झगड़ा होते रहने के पूरे-पूरे आसार रहते हैं,''

''परन्तु मैं फिर भी एक दूसरे को बताने योग्य सभी बातें बता कर एक दूसरे का विश्वास पात्र बने रहने की प्रबल समर्थक रही हूं और प्रतीत होता है शायद इसी कारण अपने सामाजिक और पारिवारिक संबंधों में मैं सफल भी हूं . . .।''

टीना उर्फ (एक बार फिर कहूंगा आखरी बार) 'फ्लूड' मुझे एक ही दिन में पूरे वैवाहिक या स्त्री पुरुष के निजी संबंधों का सम्पूर्ण लेखा समझा देना चाहती थी परन्तु अंततः मदनगीर का बस स्टाप आ गया और हम दोनों उतर कर विदा लेते क्रमशः अपने-अपने घरों की ओर चल दिए। निकट भविष्य में परिवार सहित एक दूसरे से संबंध बनाए रखने के वायदे सहित।

-120-जी, पुष्प बिहार, सैक्टर-IV
नई दिल्ली-110017

''हास्य-व्यंग्य''

''मैं मुंशी प्रेमचन्द नहीं बन सकता

जे.जे. श्रीवास्तव ''ज्योति''

एक दिन जीवन की एक बड़ी ''भूल'' से घर की सफाई करने का मूड बना बैठा। 'भूल'' से कुछ शीशे का सामान टूटा। ''भूल'' से दीवार पर लगे मकड़ी के बसे-बसाए घरों को सरकार द्वारा हरसूद के बसे-बसाए घरों की तरह उजाड़ने के चक्कर में, दीवार घड़ी ''भूल'' से बांस लग जाने के कारण मेरे पैर पर गिर पड़ी और दीवार घडी के कांटे आगे-पीछे चलना भूल गए और ''भूल'' से हमारा सुपुत्र ''संदेश'' कहीं से भूला-भटका कमरे में आया और हमारे पन्द्रह वर्षों के सारे उपकारों को ''भूलकर'' दीवार घड़ी का संदेश अपने मम्मी तक पहुंचाने में एक बात भी नहीं ''भूला'' और हमारी श्रीमती जी ''मंजू'' पत्नी का धर्म ''भूलकर'' अपनी शालीनता ''भूल'' गई और इतनी जोर से दहाड़ी कि मेरे अंदर का शेर शहर छोड़कर घने जंगल की ओर भाग गया।

''इस घड़ी को क्या हुआ''–मंजू के पांच शब्द वातावरण में गूंज गए।

मैं हकलाते हुए बोला-''कुछ नहीं, डी... डीयर! वो जाला छुड़ाने वाली मशीन, मेरा मतलब वो डंडा, सॉरी वो ब्रुश, भूल से दीवार पर लटकी हुई पुरानी घड़ी पर लग गया और घड़ी गिरकर टूट गई। कितनी घटिया, हल्की, सस्ती और बेकार थी वो घड़ी। समय भी गलत बताती थी। अच्छा हुआ टूट गई।''

''क्या कहा! वह घड़ी घटिया, हल्की, सस्ती और बेकार थी। समय भी गलत बताती थी। क्यों जी! एक बात तो बताओ, मेरे मायके से मिली हर चीज तुम्हें घटिया, सस्ती और बेकार क्यों नजर आती है। इतनी ऊंचाई से तो दिल्ली के घंटा घर की घड़ी भी गिरे तो दूरबीन से ढूंढने पर भी उसकी सुईया नहीं मिलें, और रही बात घड़ी की धड़कन की, तो घड़ी की तरह तुम भी गिरते तो तुम्हारी धड़कन में भी अंतर आ जाता और दिल इस तरफ होता, उधर नहीं-''मंजू ने मुझे दिल की दूसरी तरफ सीना पकड़ते हुए देखकर कहा।''

''अच्छा, तो यह घड़ी तुम्हारे मायके से आई थी।, तभी मैं कहूं कि इतनी मजबूत क्यों है। यह देखो, इतनी ऊंचाई से गिरने के बाद भी इसका एक भी सैल नहीं टूटा''–मैं एक शातिर राजनीतिज्ञ की भांति तुरंत पैंतरा बदलते हुए बोला, क्योंकि इतनी देर में, मैं यह तो समझ ही चुका था कि एक बार फिर मैंने अंधेरे में गाय के धोखे में आदमखोर शेर की पूंछ मरोड़ दी है।

मैं अपनी बची-खुची आबरू बचाने के उद्देश्य से दूसरे कमरे में जाकर इधर-उधर फैली हुई किताबों को ठीक करने लगा। उस दिन हमारी किस्मत अधिक खराब नहीं थी। अत: हमारी श्रीमती जी दो-चार हजार रुपयों में आग लगाने हेतु शॉपिंग करने बाजार जा रही थी। अत: एक प्रतिशत भी हमारे मुँह लगने के ''मूड'' में नहीं थी। उस दिन हमारी यह गलतफहमी भी दूर हो गई कि पत्नी द्वारा की गई ''शॉपिंग'' पति के लिए हमेशा हानिकारक ही होती है। उस दिन यदि वह बाजार नहीं जाती तो यह दीवार घड़ी का मामला ''अयोध्या कांड'' से भी अधिक लम्बा खिंचता।

मंजू के अंतर्ध्यान होते ही हम चतुर्भुज हो गए। हमने ''मिनट से पहले'' उस मरी हुई ''घड़ी'' की अस्थियां बीनीं और नजदीक के कूड़ादान में विसर्जित कर आए। हम उस मनहूस ''घड़ी'' को मंजू के लौटने से पहले ही साफ करना चाहते थे ताकि वह एक''घड़ी'' भी हमारे घर न रहे। क्योंकि यदि वह

''घड़ी'' हमारे घर में रहती तो ''घड़ी-घड़ी'' हमारी श्रीमती जी उस ''घड़ी'' की चर्चा करके हमें ''घड़ी-घड़ी 'घड़ी' करती रहती और हमें उस ''घड़ी'' के कारण ''घड़ी-घड़ी'' ''घड़ी'' होने का दुःख न जाने कब तक झेलना पड़ता।

घड़ी की अस्थियां कूड़े में विसर्जित करने के बाद हम फिर ''होमवर्क'' में लग गए जो हमारी श्रीमती जी ने सुबह-सुबह अपनी कोयल जैसी मधुर आवाज में हमें सौंपा था।

काम करते-करते अचानक हमारे हाथ में एक वजनी पुस्तक पड़ गई। जिसके ऊपर खुदा हुआ था ''प्रेमचन्द की अमर कहानियां''। हम बचपन से ही काका ''प्रेमचन्द'' के ''पंखा' (फेन) रहे हैं। हमने उड़ते-उड़ते ''काका'' की दो-तीन कहानियां पढ़ मारी। न जाने कैसे उस दिन काका प्रेम चन्द हमारे ''दिमाग'' से होते हुए ''दिल'' में बैठ गए और लगे हमें उकसाने कि हम भी कहानियां लिखें। हमने उन्हें पास में बैठाकर बहुत समझाया कि हे काकाजी! यह कहानी-वहानी लिखना हमारे घर के माहौल को देखते हुए संभव नहीं है। हम कहानी क्या, कहानी का शीर्षक लिखने में भी महीनों लगा देंगे। लेकिन उस दिन काका की दलीलों के सामने हमारी एक न चली और हम तुरन्त कॉपी-पेन लेकर इस प्रकार मुद्रा में बैठकर सोचने लगे जैसे पन्त, निराला, दिनकर और गुप्त जैसे महान लेखकों को हमने ही कलम पकड़ना सिखाई हो।

हमने एक सुन्दर सस्ता, टिकाऊ विषय लिया और कपड़े उतारकर उस विषय की गहराई में उतर पड़े। हमने कहीं पढ़ा था कि अच्छे कथाकार को कहानी के विषय की गहराई में डूब जाना चाहिए, भले ही उसे तैरना नहीं आता हो। उसका ध्यान केवल कहानी लेखन पर होना चाहिए, भले ही उसके घर में 'आग' लग जाए।

अचानक एक 'चिर-परिचित' आवाज ने हमें विचार-निद्रा से जगा दिया। जागते ही हमने देखा कि हमारी श्रीमती जी हमारे पीछे आग उगल रही हैं। उनके सिर पर पट्टी बंधी हुई थी। वह अपना सम्पूर्ण क्रोध एक ही फुंकार में फुंकारती हुई बोली–''तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है क्या।'' क्या तुमने मुझे बिल्कुल ही पागल समझ रखा हैं घंटे भर से मैं दरवाजा तोड़े डाल रही हूं और तुम्हारे कानों में ''जूं'' तक नहीं रेंग रही। क्या अब दिमाग के साथ-साथ सुनने की शक्ति भी खो चुके हो। जब दरवाजा खटखटा-खटखटा कर थक गई तो पड़ोस के गुप्ताजी के घर की छत से अपनी छत पर आ रही थी कि पैर साड़ी में फंस गया और मैं अपनी छत पर सिर के बल गिर पड़ी। सिर से खून की धार नल के पानी सी बह रही थी, तो सिर पर कपड़ा बांधकर रोका है। मेरी चप्पल भी उन्हीं की छत पर गिर गई। ऊपर से नीचे तक कैसे आई हूं। यह मैं ही जानती हूं या फिर मेरा यह फूटा हुआ सिर-इतना कहते ही हमारी श्रीमती जी इतनी जोर से रोई कि मैं मलेरिया के मरीज सा कॉपने लगा। उसकी आंखों से न जाने कैसे मिट्टी के तेल सा धार बनकर बहने लगा, मुंह से पानी के जहाज की सीटी सी बजने लगी। भगवान जाने वह कब से रोने की पृष्ठभूमि तैयार कर रही थी।

उस समय हमने वक्त की नजाकत को देखते हुए कुछ भी बोलने की न कोशिश की और ना ही हिम्मत। मैंने चुपचाप कॉपी-पैन उठाए और 'एकान्त' की तलाश में ऊपर वाले कमरे में जाकर पुनः कहानी के विषय की गहराई में डूब गया।

अचानक किसी ने दरवाजा ऐसे पीटा जैसे घर में आग लग गई हो। मैं जोर से चिल्लाया–''क्यों दरवाजा जड़ से उखाड़े दे रहे हो। कुंडी नहीं खटखटा सकते क्या?''

दरवाजा खोलते ही सामने अपनी श्रीमती जी को हाथ में कुंडी पकड़े हुए देखा। वह मुझसे भी ऊंची आवाज में बोली–''जब बजाते-बजाते कुंडी टूट गई है तब दरवाजा पीटा है।'' एकाएक वह नम्र होकर धीरे-धीरे बोली–''क्योंजी! सही-सही बताना। क्या वाकई तुम्हें सुनाई देना बंद हो गया है। शाम को जाकर किसी कानों के डॉक्टर को दिखा आना वरना हम सब पागल हो जाएंगे।"

मैं कुछ बोला नहीं, बस एकटक उसे देखता रहा। जब उसे बताता भी कैसे कि मैं मुंशी प्रेमचन्द बनना चाहता हूं।

''और यह बताओ कि तुम घर में थे भी या मेरे बाहर कदम रखते ही घर से बाहर टहल लिए थे"–हमारी श्रीमती जी ने आरोप तीर चलाते हुए पूछा।

''भगवान कसम प्रिये, जो मैंने घर की दहलीज भी पार की हो, आज बाहर जाना तो दूर आज मैंने खिड़की से भी बाहर नहीं झांका'–मैंने सुरक्षा कवच के रूप में भगवान को बीच में लाना उचित समझा।

'तो फिर यह बताओ कि जाते समय गैस पर दूध रख गई थी और कह गई थी कि उबाल आने पर उतार लेना और कह गई थी कि छत पर सूख रहे कपड़े उतार लाना और तुमने . . .।''

''मैं अभी उठा लाता हूं''–''मैंने एक बार पुन: बचकर भागने का असफल प्रयास किया।''

''बस-बस रहने दो तुम तो। दूध उबल-उबल कर जल चुका है और भगोनी में इतना बड़ा छेद हो गया है कि तुम खुद उसमें से निकल जाओ . . .।''

''कपड़े तो उठा लाऊं। सूख गए होंगे--''मैंने बात काटते हुए कहा।

''उन्हें वहीं रहने दो।''

''क्यों?''

''क्योंकि आधा घंटा बरसात के पानी में वह इतने भीग चुके हैं जितने धोते समय भी नहीं भीगे थे''–श्रीमती ने एक बार पुन: हमें वहां से भागने से रोका।

''अच्छा तो मैं संदेश को स्कूल से ले आता हूं। उसकी छुट्टी हो गई होगी''–मैं याद करते हुए बोला।

''संदेश भी आ चुका है''–मंजू ने दो टूक उत्तर दिया।

''कैसे?''

''कैसे क्या? एक घंटे से स्कूल के बाहर खड़ा-खड़ा रो रहा था। एक सिपाही की नजर पड़ी तो घर तक छोड़ गया''–मंजू दांत भींचकर बोली।

''चलो! अच्छा रहा। दस रुपए तो बचे''–मैं नकली हंसी हंसते हुए बोला।

''क्या खाक अच्छा हुआ। टैक्सी का दोनों तरफ का किराया ले गया है अस्सी रुपए। ऊपर से धमकी दे रहा था कि मां-बाप की लापरवाही का प्रकरण बनाकर बंद कर दूंगा''–हमारी श्रीमती जी अपनी वास्तविक अदा में झल्लाकर बोली।

''अच्छा जो होना था हो गया अब तुम तैयार हो जाओ बर्तन मांजने के लिए''–श्रीमती जी धीरे से आदेश देते हुई बोली।

''क्यों! क्या आज बर्तन वाली बाई नहीं आई''–मैंने अचानक माथे पर आए पसीने को पोंछते हुए पूछा।

''आई थी, परन्तु दरवाजा खटखटा-खटखटाकर उसकी सारी चूड़ियां टूट गईं। वह कहीं से फोन करके बता रही थी कि मैं खिड़की से सामने बैठे बाबूजी को देख रही थी, चिल्ला रही थी लेकिन बाबूजी टस से मस नहीं हुए। मेरी सारी चूड़ियां टूट गईं। अब मैं आपके घर में काम नहीं करूंगी। कोई दूसरी बाई रख लो''–हमारी श्रीमती जी मुझे घूरती हुई बोली।

''अब क्या होगा''–मेरा मुंह खुला का खुला रह गया।

''होगा क्या। जब तक कोई बाई नहीं मिलती तब तक बर्तन, कपड़े तुम्हें ही साफ करने पड़ेंगे। हां अब जल्दी से बर्तन, साफ करने नीचे आ जाओ तब तक मैं जरा कमर सीधी कर लूं। ऊपर से यह सिर'' . . . इतना कहकर मंजू चप्पलें फटकारती हुई नीचे चली गई।

मंजू के जाने के बाद मैं मन ही मन सोचने लगा हे भगवान! आज कौन सा मनहूस दिन था। कहीं वाकई मुझे कम सुनाई तो नहीं देने लगा।'' तभी मेरी दृष्टि मुंशी प्रेमचन्द की मुस्कुराती हुई तस्वीर पर पड़ी। मैं मन ही मन बुदबुदाया–"ये सब आपकी ही वजह से हुआ है। न आप मुझे कहानी लिखने के लिए प्रेरित करते और न मेरे विचारों में डूबने के कारण इतनी दुर्घटनाएं होती । मैंने कहा था न-कि मैं सात जन्म तक प्रेमचन्द नहीं बन सकता।"

''चल बेटा जे.जे.! बहुत देर से कहानी के विषय के बारे में सोच रहा था, अब यह सोच कि पहले बर्तन साफ करेगा अथवा कपड़े। तू जीवन में कभी मुंशी प्रेमचन्द नहीं बन सकता। हां किसी घर में नौकर जरूर बन सकता है। और अगर मुंशी प्रेमचन्द बनना ही है तो किसी छोटे से गांव में जाकर शांतिमय वातावरण में लिख। इस शहर और अशांति के बीच क्या कर रहा है''–मैं मन ही मन बुदबुदाया।

अगले ही पल मैं लगभग पचास बर्तनों के बीच बैठा हुआ कुछ कर रहा था। क्या कर रहा था, शायद यहां यह लिखना आवश्यक नहीं है।

–सांई-कृपा बी-13, नितिन नगर,
थाटीपुर, ग्वालियर, म.प्र.

इक्कीसवीं शताब्दी की वैश्विक समस्याएं और तुलसीदास

पी. आर. वासुदेवन

गोस्वामी तुलसीदास एक ऐसे महामहिम कवि के रूप में हमारे समक्ष हैं, जिन्होंने परम्परा से प्राप्त मूल्यों के सहारे अपने युग की समस्याओं का निदान ढूंढने की कोशिश की, साथ ही परंपरा के विकास और पोषण में योगदान दिया। तुलसी का जीवन अत्यंत संघर्षमय रहा। उन्होंने पेट और मन की आग की बहुत पीड़ा सही। भौतिक और दैहिक कष्ट भी बहुत झेले। लोक चेतना तुलसी साहित्य का प्राण तत्व है। तुलसी अपने समाज के प्रति पूर्ण सजग साहित्यकार थे। समाज की स्थिति को उन्होंने अत्यंत निकट से देखा था। ''ईक्कीसवीं शताब्दी की वैश्विक समस्याएं और तुलसीदास'' में कतिपय निम्न विषय आ सकते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन यहां किया जा रहा है :

तुलसीदास का व्यक्तित्व

तुलसी की प्रशंसा करते हुए रामवृक्ष बेनीपुरी कवि ने लिखा है :

भारी भव-सागर, उतारतो कवन पार,
जौ पै यह रामायण तुलसी न गावतो।।

'भव' शब्द जन्म और मरण का प्रतीक है जिन्हें 'लोक' और 'परलोक' भी कहा जा सकता है। परलोक के संबंध में तो कुछ कहा नहीं जा सकता कि परलोक होता भी है या नहीं, परन्तु लोक को सार्थक करने के लिए युगों से मनीषी विचार मंथन और साहित्य चर्चा करते रहे हैं। जब कभी, साहित्य चर्चा के अन्तर्गत, किसी भी संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास का नामोल्लेख होता है तब सजग सहृदय साहित्य प्रेमियों के सम्मुख एक बार महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक स्थापित मानवीय जीवन मूल्यों का एक जीवंत एवं गतिशील चित्र उभर आना स्वाभाविक है। भारतीय चिन्तन तत्व मीमांसा की सुदीर्घ परंपरा में तुलसी का कृतित्व एक उत्तर युगीन प्रस्थान बिन्दु के रूप में स्थित है। पूर्ववर्ती समस्त वरेण्य सिद्धांतों का सार अपनी सूक्ष्म प्रतिभा द्वारा उन्होंने समकालीन एवं आगामी पीढ़ियों को एक ऐसे बौद्धिक और साहित्यिक रसायन के रूप में प्रदान किया है, जिसमें अद्भुत संजीवनी धारा की अक्षुण्ण ऊर्जा विहित है।

गोस्वामी तुलसीदास समग्र मानवता के कवि हैं। भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं। वे भक्त, लोकनायक एवं कवि एक साथ हैं। उनका व्यक्तित्व उच्चतम स्तर की प्रतिभा तथा विराट उदात्त दृष्टि के कारण महाकवि तथा लोकनायक के द्विविध गौरव से संपन्न हो गया है। उदात्त सांस्कृतिक समन्वय, चरित्र निर्माण एवं कलात्मक विभूति की दृष्टि से वे अद्वितीय हैं।

तुलसीदास का कृतित्व

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं की संख्या विवादास्पद है। शिवसिंह 'सरोज' के अनुसार उन्होंने 18 ग्रंथ लिखे, जबकि बंत्रवासी 'तुलसी ग्रंथावली' के अनुसार उनकी रचनाओं की सख्या 60 है। मिश्र बंधुओं ने उनके ग्रंथों की संख्या 25 ही मानी है। डॉ. ग्रियर्सन और पण्डित रामचन्द्र शुक्ल उनके केवल 12 ग्रंथों को प्रामाणिक मानते हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इन 12 ग्रंथों के आधार पर 'तुलसी सतसई' को भी इनकी प्रामाणिक रचना मानते हैं। कुछ विद्वान 'हनुमान बाहुक' को भी तुलसी कृत मानते हैं। उनका कथन है कि बाहु-पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए तुलसी ने हनुमान जी की स्तुति रूप में वह रचना रची थी। इस प्रकार तुलसी की ग्रंथों की संख्या बड़ी अनिश्चित भी है। निम्नलिखित 12 ग्रंथों को प्राय: सभी विद्वानों ने तुलसी कृत स्वीकार किया है :

1. दोहावली सन् 1626
2. वैराग्य संदीपनी सन् 1626-27

3.	रामाज्ञा प्रश्न	सन् 1627-28
4.	रामलला नहछू	सन् 1628-29
5.	जानकी मंगल	सन् 1627-30
6.	गीतावली	सन् 1630
7.	बरवै रामायण	सन् 1630
8.	विनय पत्रिका	सन् 1631
9.	कवितावली	सन् 1631
10.	रामचरितमानस	सन् 1631
11.	पार्वती मंगल	सन् 1643
12.	कृष्ण गीतावली	सन् 1643

उपरोक्त ग्रंथों की जो तालिका दी गई है उसमें 'रामचरितमानस' तथा 'पार्वती मंगल' का समय निश्चित है, बाकी सब रचनाओं का समय प्राय: अनुमानों पर आधारित है।

तुलसीदास का रामचरितमानस

तुलसी कृत 'मानस' रामायण एवं महाभारत के साथ-साथ भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। रामचरितमानस धर्मग्रन्थ, संस्कार ग्रंथ, पुराण ग्रंथ, स्मृति ग्रंथ जैसे अनेक रूपों में समादृत है। फलत: तुलसी-काव्य पर्णकुटी से राजप्रसाद पर्यन्त असंख्य पाठकों व श्रोताओं द्वारा पढ़ा व सुना जाता है। विश्व के इतिहास में शायद ही किसी कवि को ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त है। सौभाग्य से हिन्दी प्रदेश को रामकथा के प्रणेता के रूप में महान तुलसी मिलें, जिन्होंने रामचरितमानस द्वारा रामभक्ति और रामकथा को युग युगान्तर के लिए न केवल अपने प्रदेश में, बल्कि हजारों-हजारों मील दूर के देशों मारिशस, फीजी, सूरीनाम, ट्रिनिदाद और दक्षिण-अफ्रीका तक में सीमित कर दिया। रामचरितमानस हिन्दी का सर्वाधिक चर्चित, लोकप्रिय और आदर्श महाकाव्य है। सरल और सरस भाषा में भारतीय संस्कृति के मधुर जीवनापयोगी सूत्रों के स्वरों से सुभाषित होने से इसे देश विदेश में लोक-धर्मग्रंथ के रूप में सम्मान प्राप्त है। इसकी लोकप्रियता में इसकी भावानुकूल भाषा की आकर्षक संप्रेषणीयता की महत्ती भूमिका है। भारतीय संस्कृति के पुजारी महाकवि तुलसीदास के साहित्य में उनके व्यक्तित्व की छवि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे संस्कृत के विद्वान, ज्योतिषी, पुराणवेत्ता और काव्यशास्त्री थे। मानस में तुलसीदास की अद्भुत प्रतिभा के दर्शन होते हैं। एक ओर देवभाषा संस्कृत की गंगा का पावन भाव जल जन मानस को आह्लादित करता है तो दूसरी ओर जनभाषा अवधी की तरनी तनुजा की भाव लहरों से दूर-दूर, बहुत दूर तक के परिवेश को मुस्कराने का अवसर मिलता है।

लोक मंगल की कामना से आराध्य की अर्चना और अनुध्यान, सातों काण्डों के आदि में श्लोकों के माध्यम से किया गया है। अयोध्या काण्ड में तुलसी ने सीता राम की अर्चना सरल देवभाषा में की है –

नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्ग सीतारोपितवामभाग।
पाणौ महासायकचारूपायं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

(अयोध्या काण्ड श्लोक-3)

इस प्रकार मानस के आदि अंत और प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में देवभाषा का प्रयोग कर इसे दिव्य रूप प्रदान किया गया है। देवभाषा की हरी भरी धरती से उभरा आराध्य भाव विद्वानों को अनुप्राणित करता है और श्रद्धालुओं को शांत और भक्ति रस पान कराता है। मानस की भाषा की मधुरता, कर्ण-प्रियता, सहायता और बोधगम्यता से ग्रंथ में भाव संप्रेषणीयता का मन भावन विकास हुआ है।

तुलसीदास का चिन्तन

भक्ति का वह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी समय गोस्वामीजी का अवतार हुआ, जिन्होंने वर्ग धर्म, आश्रम धर्म, कुलाचार, वेदविहित कार्य शास्त्र प्रतिपादित ज्ञान, इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुन: सामंजस्य स्थापित कर आर्य धर्म को छिन्न-भिन्न होने से बचाया। ऐसे सर्वागदर्शी लोक व्यवस्थापक महात्मा के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र के चरित्र से बढ़कर अवलंब कौन और मिल सकता था। उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से उन्होंने धर्म के सभी रूपों को दिखाकर, भक्ति का प्रकृत आधार खड़ा किया, जनता ने लोक की रक्षा करने वाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा। उसने धर्म को दया, दाक्षिण्य, नम्रता, सुशीलता, पितृभक्ति, सत्यव्रत, उदारता, प्रजापालन, क्षमा आदि में ही नहीं देखा, बल्कि क्रोध, घृणा, शोक, विनाश और ध्वंस आदि में भी उसे देखा।

लोक मर्यादा का उल्लंघन, समाज की व्यवस्था का निराकार, अनाधिकार चर्चा, भक्ति और साधुता का मिथ्या दंभ, मूर्खता छिपाने के लिए वेद शास्त्र की निन्दा, ये सब बातें ऐसी है जिनमें गोस्वामीजी की अंतरात्मा बहुत व्यथित हुई।

राम में विश्व मानव

जिस तरह हमारी आंखों के आगे एक बाह्य जगत है, उसी तरह हमारे भीतर एक अंतर्जगत है। जिस तरह बाह्य जगत में आकाश है और उसमें तरह-तरह के पक्षी उड़ते हैं, वैसे ही अंतर्जगत में भी आकाश है और उसमें विचार तरंगों के विविध पक्षी उड़ान करते हैं भावों की घटाएं घिरती हैं, कल्पना की दामिनी दहकती है और अनुभूति के महोदधि में भौरें आते हैं।

बाह्य जगत में कल-कल निनादिनी सरिताएं हैं, आनंद मूक पर्वत हैं, किसी का प्रकाश ढोने वाले सूर्य, चन्द्र और तारागण हैं, वृक्ष, लता और गुल्म हैं, फूल, पंखड़ी और पल्लव हैं, वन, वन-पथ उपत्यका, नदी-तट और हिम शिखर हैं उसी प्रकार अंतर्जगत में हृदय है, प्रेम है, विरह है, वात्सल्य है, आमोत्सर्ग का उन्माद है, आश्चर्य है, प्रेरणा है, महत्वाकांक्षा की ज्वाला है, पश्चाताप है, वेदना है, आशा और निराशा है, संदेश है, विरक्ति है, दीनता और चिन्ता है, सबसे रस है और सब में सुख और दु:ख ओत-प्रोत हैं।

तुलसीदास के अंतर्जगत का दर्शन करने का सौभाग्य हमें उनके रामचरितमानस, कवितावली, दोहावली, और विनयपत्रिका से प्राप्त होता है। ये वे खिड़कियां हैं, जिनके भीतर से हम तुलसीदास को उस अंत्यत मनोरम और शाश्वत सुखमय अंतर्जगत का दर्शन कर सकते हैं, जहां मानव हृदय के लिए अबाध आकर्षण है, और जहां से जीवन के लिए संदेश की ध्वनि सदा उठती रहती है। तुलसीदास अंतर्जगत के मनुष्य हैं। राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, हनुमान और दशरथ, कौशल्या और सुमित्रा इत्यादि।

तुलसीदास के राम और सीता मनुष्य मात्र के आदर्श हैं। कितने सौभाग्य की बात हो, यदि तुलसीदास का अंतर्जगत हमारा जगत हो जाए और हम घर-घर में राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, हनुमान और दशरथ को बसा हुआ पाएं।

वैश्वीकरण की परिभाषा

वैश्वीकरण के इस दौर में जहां एक ओर भौगोलिक दूरियां घट रही हैं, वहीं दूसरी ओर मन की दूरियां बढ़ती जा रही हैं। कारण यह है कि व्यक्ति मानवता के सहज संबंधों को भुलाता जा रहा है आज हर व्यक्ति के अंदर अंदर ही दो-दो व्यक्ति जन्म ले चुके हैं। आज वह अपनी अंध सांप्रदायिकता एवं पाशविक वृत्तियों का गुलाम बनता जा रहा है। भीतर की नवार्जित स्वतंत्रता एक लंबे संघर्ष की महत्तम परिणति है जो भारतवासियों को देश विभाजन के रूप में भारी मूल्य देकर चुकानी पड़ी है।

एक प्राकृतिक इकाई के रूप में स्थित भूखण्ड को धर्म के नाम पर दो स्वतंत्र राजनीतिक खण्डों में बंट जाना पड़ा। भारत ऐसी ही चुनौती से गुजरकर आज अपने पैरों पर मजबूती से खड़ा है। औद्योगीकरण के कारण व्यापार और उद्योग तेजी से पनप रहे हैं। विज्ञान आगे बढ़ रहा है और प्रतियोगिता के इस दौर में भारत को अपनी स्थिति मजबूत करने तथा अपनी नई पहचान बनाने के लिए कई स्तरों पर अनेकानेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यदि सामाजिक स्तर पर चुनौतियों की बात करें तो यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि आज बड़ी तेजी के साथ सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन हो रहा हैं सामाजिक मूल्यों का केन्द्र जनकल्याण की धारणा होती है।

वैश्वीकरण में भारत की स्थिति

आधुनिक युग व्यक्ति स्वतंत्रता तथा समानता का युग है। गुलामी की जंजीरे तोड़कर मानव एक नई स्वतंत्र जीवन चेतना लेकर प्रगति के अनछुए शिखरों को छू रहा है। आज भारत को जीवन के हर क्षेत्र में कई मौके मिल रहे हैं और भारत भी अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए नई दिशाएं तलाश रहा है।

''मेरी सहेली'' पत्रिका के जून 2000 अंक में छपे एक लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि भारत एशिया के ऐसे देशों में प्रथम एवं विश्व में तीसरा स्थान रखता है जहां नाबालिक लड़कियों का विदेशों में वेश्यावृत्ति के लिए खरीदा और बेचा जाता है। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि भारत को सामाजिक स्तर पर अपनी स्थिति बनाए रखने तथा विकास करने के लिए उपर्युक्त समस्याओं से निपटकर ऊपर आना होगा। भारतीय समाज का निम्नवर्ग भूख और गरीबी से जूझ रहा है और भारत को उससे छुटकारा पाने हेतु नई-नई योजनाएं तलाश करनी होगी क्योंकि वैश्वीकरण की स्थिति में समाज को मजबूत करना होगा और दोहरे मानदण्डों से काम नहीं चलेगा। समाज में नारियों की स्थिति मजबूत करनी होगी। आर्थिक संघर्ष, नवनियान एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता ने परंपरागत पारिवारिक संस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया है और भारत के लोग इन समस्याओं से जूझ रहे हैं। संबंधों में भी दरारे आ गई हैं तथा इन संबंधों में भावनात्मक न रह कर अर्थ के नाम पर बौद्धिकता आ गई है। जीवन की व्यस्तता और अर्थ केन्द्रित दृष्टि आ गई है। जीवन की व्यस्तता और अर्थ

केन्द्रित दृष्टि ने भारतीय पारिवारिक संस्था को सबसे अधिक ठेसें पहुंचाई हैं और जब तक समाज के इस अंग को अनदेखा किया जाता रहेगा, तब तक इसे अनेक चुनौतियां झेलनी पड़ेंगीं, क्योंकि कोई भी देश पारिवारिक इकाई से ही निर्मित होता है। सामाजिक स्तर की चुनौतियों के साथ-साथ भारत को नैतिक और आर्थिक स्तर पर भी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भ्रष्टाचार, अनैतिकता, उपभोगतावादी, संस्कृति, अतिमहत्वाकांक्षा जैसी अनेकानेक भावनाएं नैतिक मूल्यों के विघटन का कारण बन रही हैं। यही नहीं, जो अदालतें लोगों को न्याय दिलवाती हैं वे आज स्वयं कटघरे में खड़ी हैं। नैतिक शब्द का अर्थ मानव के आचरण से जुड़ा है तथा सकाज धर्म और राष्ट्र द्वारा निर्मित नियमों से अनुकूल आचरण से निर्बंधित मूल्य ही नैतिक मूल्य है दया, त्याग, अहिंसा, सत्य करुणा आदि मूल्य की शाश्वत संपति रहे और जब वह उन मूल्यों से विचलित हो जाता है तो उसके समक्ष अनेक कठिनाईयां उत्पन्न हो जाती हैं। भारत के समक्ष आज सबसे बड़ी त्रासदी नैतिक मूल्यों के विघटन की है। परंपरागत जीवन मूल्यों में नए परिवश के अनुसार परिवर्तन आ रहा है। आज की स्थिति में व्यक्ति भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में शामिल है। वह सारे नैतिक मूल्यों को कुचलकर आगे बढ़ना चाहता है। भारत के समक्ष इन शाश्वत मूल्यों को स्थापित कर आगे बढ़ने की सबसे बड़ी चुनौती है।

पर्यावरण और भ्रष्टाचार :

आज के भारत की स्थिति पर नजर दौड़ाएं तो यह महसूस किया जा सकता है कि आज हर हिन्दुस्तानी अपने हिस्से का हिन्दुस्तान बेचता नजर आता है। भारी रकम लेकर सर्वोच्च पद हासिल किए जा रहे हैं। पूरा का पूरा तंत्र ही नैतिक मूल्यों से हीन होता जा रहा है। ''सरिता'' पत्रिका के मई 2001 के प्रथम अंक में छपे एक लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि भारत सरकार के चार बड़े विभाग उत्पाद शुल्क, आयात शुल्क, राजस्व, आय कर भ्रष्टाचार में लिप्त हैं और भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इन संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार रूपी एड्स से निपटने की है। आज तो स्थिति यहां तक है कि प्रथम श्रेणी के नेतृत्व पर भी कमीशन खा लेने और बड़े-बड़े घोटालों में लिप्त होने के आरोप लगते हैं। अब न तो गांधी, पटेल, सुभाष जैसे जन नेता रहे और न ही उनकी समृद्ध विरासत। भ्रष्टाचार में भी लोक सेवकों के भ्रष्टाचार, लोक उद्धारकों के भ्रष्टाचार, सामान्य जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, लोक प्रतिनिधियों के भ्रष्टाचार दिखाई देते हैं और भारत को पहले इन्हीं से निपटना होगा। किन्तु आज भ्रष्टाचारियों को दण्ड देने वाले न्यायालय तथा न्यायधीश स्वयं को ही भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं रख पा रहे हैं। इन सबके पीछे उपभोक्तावादी संस्कृति, जिसे पूंजीवादी संस्कृति कहा जा सकता है का बड़ा हाथ है। सुविधा और सम्पन्नता के नाम पर व्यक्ति बहुत कुछ नैतिकहीन कार्य करने लगा है, उपभोग की चीजें अभिजात्य की प्रतीक बन गई हैं और इन्हें ही सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार मान लिया गया है। अभिजात्य और प्रतिष्ठा की इस ऊंचाई तक पहुंचने के लिए मानव आज मानवता के बदले सुविधा और सम्पन्नता के साधनों के पीछे बदहवास होकर दौड़ा चला जा रहा है।

परिणामस्वरूप उसकी चेतना उसके व्यक्तित्व को दबाए जा रही है। सम्मान का मानदण्ड पैसा हो गया है। आज की पूंजीवादी व्यवस्था में कोई मध्यवर्गीय प्रतिभा संपन्न युवक विदेशी कंपनियों द्वारा हाथों हाथ खरीद लिया जाता है। वहां जाकर ऐसे युवक धीरे-धीरे अपने परिवेश और जमीन से हटते जाते हैं। भारत को पहले इन युवा प्रतिभाओं को उचित मौके देते हुए अपने देश में ही रोकना होगा। एक ऐसे युवक, जो भारत में रहकर उसी के पैसे में पढ़ता है वहीं विदेशी कम्पनियों द्वारा पैसे के बल पर गुलाम बना लिया जाता है तथा वह उन्हीं के लिए कार्य करता है। भारत के समक्ष यह चुनौती बहुत बड़ी है इसको जीतने के लिए भारत को कई कदम उठाने होंगे। अन्यथा भविष्य में इसके परिणाम अत्यंत घातक होंगे।

उपसंहार

उपरोक्त जितने भी तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने जीवन काल में इन सभी समस्याओं का जिक्र अपनी श्रेष्ठ ग्रंथ ''रामचरितमानस'' से पूर्व में ही कर दिया था। इसलिए गोस्वामी जी रचित मानस आज भी प्रासंगिक है और इसमें भविष्य की झलक स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। तुलसीदास जी ने लोकमंगल, भूमंडलीकरण, मानव मूल्यों पर अपनी लेखनी द्वारा पूरे विश्व को आगाह कर दिया है। इसलिए उनकी यह कृति आज भी उतनी ही श्रेष्ठ है, जितनी उस काल में थी। इक्कीसवीं शताब्दी की वैश्विक समस्याओं का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी की महान रचना मानस में मिलता है और युगों-युगों तक यह लोगों को प्रेरित एवं पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

–हिन्दी अधिकारी
महालेखाकार का कार्यालय
लेखा परीक्षा भवन,
361, सलाई, चेन्नै-600018
तेनामपेंट

जीवन का मूल्य–सेवा

रामनिवास गोयल

प्रिय पाठको! आप सभी जानते हैं कि इस दुनिया में सभी दु:खी हैं जैसे गुरू नानक देव जी ने कहा है कि नानक दुखिया सब संसार, परंतु इस संसार में रोने से, दूसरों को दोष देने से, लड़ने से, मारने से कुछ कार्य बनने वाला नहीं। जिसने जन्म लिया है उसे यहां रोने के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगा, केवल मनुष्य के सत्कर्म तथा उसका व्यवहार साथ चलेगा। इसलिए हम सबको चाहिए कि अधिकार पाने से पहले अपने कर्त्तव्यों को श्रेष्ठता से, अपनी योग्यता से पूरा करें तथा समाज को सुखी बनाएं। समाज पर बोझा बनकर जीना अत्यन्त कष्टदायी है। मनुष्य जन्म लेकर पशुओं से भी अधिक कृतघ्न बनता जा रहा है। हम विचार कर देखें कि सभी देवी देवता अपना कार्य सुचारू रूप से चलाते हैं, जैसे सूर्य भगवान रोजाना समय पर दर्शन देकर सभी प्राणियों का जीवन सुखी बनाते हैं, इसी तरह वायु, अग्नि, नदियां, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, चांद, सितारे तथा पशु भी हमारी सेवा कर रहे हैं। किन्तु हम इतने कर्म रहित है कि हमारा किसी के लिए कोई योगदान नहीं। यह सारा संसार सभी के योगदान से फलफूल रहा है। इसलिए हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम निरन्तर अपने कार्यों से दूसरों का जीवन सुखी बनाएं। हमेशा ध्यान रखें कि पाने से पहले कुछ खोना पड़ता है। जब आपने सत्कर्म रूपी बीज ही नहीं बोया होगा तो मीठा फलदार वृक्ष कहां से उत्पन्न होगा। कारण और परिणाम का गहरा संबंध है। यह विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि सुख और दु:ख केवल हमारे विचार हैं। संसार में कौन किसी को सुख और दु:ख दे सकता है। सभी हमारे किए गए कर्मों के फल हैं। हम हमेशा अपने स्वार्थ में लगे रहते हैं। कभी कुछ समय उस परम पिता परमेश्वर के लिए भी निकालें जिसने हमें यह दिव्य शरीर प्रदान किया है और कुछ समय समाज के कार्यों में लगाएं जिसमें हम फले-फूले हैं। यह संसार निरंतर चलने वाला क्रम है। इसलिए हमारा सभी का परम कर्त्तव्य है कि हम भी इस संसार चक्र के क्रम हैं इसलिए हमारा सभी का परम कर्त्तव्य है कि हम भी इस संसार में हमेशा न यहां रहना है, न दुबारा यहां आना है, फिर हाय-तौबा किस बात की। दूसरों के हितों का भी ध्यान रखना चाहिए। केवल अपने आप को दु:खी न समझो, संसार में करोड़ों प्राणी अति दु:खी हैं, दूसरों पर दया करो, उनका भला करो। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में जो विचार रखे हैं, उन पर ध्यान दें– 'परहित सरस धर्म नहीं भाई, कर विचार देखो मन माही' धर्मों के अनेक ठेकेदार धर्म की नाना प्रकार से व्याख्या करते हैं, पर सभी धर्मों का एक ही मूलमंत्र है–दूसरों का हर प्रकार से भला करना एवं उनकी सहायता करना। मनुष्य का जीवन केवल अपने लिए नहीं है बल्कि दूसरों की सेवा करने और उनका सही मार्गदर्शन करने के लिए हैं। ईश्वर ने आपको जो भी प्रदान किया है उसमें से कुछ निकालकर जरूरत मंदों के उपकार में लगाओ तब आप स्वयं आनन्द महसूस करेंगे। प्रश्न यह है कि हम सभी सुख चाहते हैं परंतु दूसरों के लिए कुछ त्याग नहीं करना जानते, हर समय अपना-अपना पुकारते हैं। आज संसार में चारों तरफ हाहाकार मच रहा है। सभी देश मार-काट तथा हथियारों की होड़ में लगे हुए हैं। सभी शासक बनना चाहते हैं और सारे समाज का रक्त शोषण करना चाहते हैं। सभी जगह भ्रष्टाचार इतना व्याप्त है कि आम आदमी तक सरकारी मदद पहुंच नहीं पाती। सभी मध्यस्थ सारे धन को लूटने में लगे हैं, चाहे नेता हो, अफसर हो। सभी की नीयत इतनी खराब हो चुकी है कि किसी को अपने वतन के प्रति श्रद्धा नहीं। देश का हाल तथा समाज का हाल कुछ भी हो, उन्हें केवल अपने परिवार की तरक्की चाहिए। आज अधिकतर लोग भावनाहीन हो गए हैं। चाहे दफ्तर हो, स्कूल हो, विश्वविद्यालय हो, अस्पताल हो, कचहरी हो, सरकार हो, सभी जगह घोटाला ही घोटाला है। राष्ट्र को अगर सुखी बनाना है तो समाज के सभी व्यक्तियों को अपने दायित्व को निष्ठा के साथ निभाना होगा। आगे मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूं–बिना कारण के परिणाम नहीं होता। क्या बिना बीज बोए पौधा उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार सत्कर्म रूपी बीज बोओगे तो पौधा भी उसी का पैदा होगा। यह अकाट्य सत्य है।

सेवानिवृत्त, उप-प्रधानाचार्य,
13/72,सुभाष नगर, नई दिल्ली-110027

वापसी

अनिता अनुराग

''पिताजी। चाय पीकर जरा सब्जी वैगहर ले आना। खत्म हो गई है'' अमृता ने चाय का प्याला भागीरथ को थमाते हुए कहा।

''ठीक है बहू। बता दो क्या-क्या लाना है और पैसे दे दो।''–भागीरथ ने बहू के हाथ से प्याला लेकर चुस्की लेते हुए कहा। रोज की तरह आज फिर चाय में मीठा कम था पर भागीरथ की हिम्मत नहीं हुई कि बहू से एक चम्मच चीनी मांग ले। शहर में कम मीठी चायें पीना एक ''स्टेटस सिंबल'' जो है। बहू मांगने पर चीनी देती तो है पर चेहरे पर भाव ऐसे आते हैं जैसे किस गंवार से पाला पड़ गया हो।

''मेज पर थैला रख दिया है और पैसे भी''–अमृता ने कहा और तेजी से बाथरूम में घुस गई। उसे अपने ऑफिस जाने में देर हो रही थी।

भागीरथ ने भी जल्दी से चाय खत्म की और थैला उठाकर सब्जी लेने चल दिया। मदर डेयरी का बूथ थोड़ी दूरी पर था। उसने तेजी से कदम उठाने शुरु कर दिए। यदि देर हो गई तो फिर बहू का बुड़बुड़ाना सुनना पड़ेगा।

''और भागीरथ जी कैसे हो?'' पार्क से टहल कर आ रहे बगल वाले शर्मा जी ने आवाज लगाई।

''बस कट रही है शर्मा जी''–भागीरथ ने अपनी उखड़ती हुई सांसों पर काबू पाते हुए जवाब दिया। चौथे माले से उतरते हुए उसकी सांस हमेशा फूल जाती है और उससे ज्यादा नहीं बोला जाता।

''कैसे हो'', ''जी अच्छा हूं'' पूछताछ करने का यह तरीका इतना पारंपरिक हो गया है कि पूछने वाला भी जानता है कि आगे वाला क्या जवाब देगा। पर मैंने तो ठीक ही जवाब दिया। भागीरथ ने सोचा कट ही तो रही है जिंदगी। कहीं कोई उत्साह नहीं, कहीं कोई अपनापन नहीं।

जब पैंतीस साल की नौकरी पूरी कर कॉलेज से रिटायर हुआ तो कभी सोचा भी नहीं था कि शहर में जाकर रहना पड़ेगा। गांव में जिधर से निकलता लोग गुरुजी और मास्टर जी कहकर आदर से घेर लेते और वह अभिभूत हो उठता ''कितना प्यार करते हैं यहां के लोग, हम तो बाकी उमर भी यहीं गुज़ार देंगे''–उसने अपनी पत्नी सरस्वती से कहा था।

''हां, गांव छोड़ने का मन तो मेरा भी नहीं होता'' उसने कहा था, पर लड़के कह रहे थे कि अब हमारे साथ चल कर रहो।

''अरी पगली। यह तो सब औपचारिकता निभाने की बातें हैं। तू नहीं जानती कि तेरे दोनों बेटों की बहुएं नौकरी वाली हैं। उनके साथ कैसे निभेगी तेरी''–भागीरथ ने उसे समझाने की कोशिश की थी।

पर सरस्वती तो पहले ही सब समझती थी। पिछली बार गर्मियों की छुट्टी में जब वह बड़े बेटे के घर गई थी तो बहू अंगूर भी फ्रीजर में छिपा देती थी ताकि बुढ़िया को ढूंढने पर भी न मिलें। फिर एक बार जब अचानक खांसी का दौरा आने पर भागीरथ ने अचानक ही फर्श पर थूक दिया था तो बेटे ने बड़े सपाट लहाजे में कह दिया था–''पिताजी यह गांव नहीं है कि जहां आए थूक दिया। थूकना है तो वाश बेसिन पर जाकर थूकिए।'' और भागीरथ के साथ-साथ सरस्वती का भी मूंह उतर गया था। छुट्टियां खत्म होने से पहले ही दोनों वापस लौट आए थे।

''चलो थोड़े दिन छोटे लड़के के पास दिल्ली रह आएंगी।'' भागीरथ ने कहा। छोटा लड़का प्रेम दिल्ली में नौकरी करता था पर सरस्वती जानती थी कि उसकी बहू अमिता के साथ तो निभाव और भी मुश्किल है। सरस्वती की आदत है कि सुबह चौके में घुसो तो नहा-धोकर, कपड़े बदलकर ही रसोई बनाओ। पर छोटी बहू हमेशा पहले खाना बनाती है फिर नहा-धोकर ऑफिस के लिए तैयार होती है। एक बार उसने टोका भी था तो अमिता ने टका-सा जवाब दे दिया था–''मां जी किचेन में जाकर सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो जाता है और फिर आटे से सने हाथ लेकर तो ऑफिस जाया नहीं जा सकता।'' बात ठीक भी थी। पर सरस्वती का मन नहीं मानता तो नहीं मानता । जो बात मां के जमाने से सीखी, सास के सामने देखी और खुद जिन्दगी भर निभाई उसे अब बुढ़ापे में आकर कैसे छोड़ दे।

और बिना कुछ कहे ही दोनों बूढ़े-बुढ़िया समझ गए थे कि इज्जत के साथ रहना है तो यहां गांव में ही रहो। छटे-छमास या गाहे-बगाहें एक-आधे दिन के लिए हम खुद बच्चों के पास हो आएं या बच्चे हमारे पास आकर मिल जाएं इसी में घर की सुख-शांति है।

पिछली बातों में मग्न भागीरथ को पता नहीं चला कि कब मदर डेयरी का बूथ आ गया। उसने जल्दी से आलू गोभी, टमाटर बगैरह लिए और बिल चुका कर वापस मुड़ने लगा। तभी उसकी नजर एक शेल्फ में रखी ग्वार की फलियों पर पड़ी। सरस्वती ग्वार की फलियां कितनी अच्छी बनाती थी। उसे फिर से सरस्वती की याद आने लगी। उसे भी इन फलियों की सब्जी कितनी अच्छी लगती थी। पर एक बार जब वह ग्वार की फलियां यहां से लेकर घर पहुंचा था तो बहू ने साफ मना कर दिया था कि पिताजी आप आइंदा से फलियां मत लाना। इनके तार निकालने में और इन्हें साफ करने में इतना वक्त लग जाता है कि मैं दोपहर के बाद ऑफिस पहुंच पाऊंगी और भागीरथ चुप रह गया था।

वाकई किसी पर आश्रित होकर और वो भी बुढ़ापे में जिन्दगी काटना कितना मुश्किल है–भागीरथ सोचता। पर कहे किससे? सरस्वती तो भगवान के पास चली गई, हल्का-सा बुखार हुआ था और सिर में तेज दर्द था। बाम लगाकर खटिया पर लेटी तो फिर अगली सुबह उठ ही नहीं पाई। बहुत रोया था भागीरथ। तीन महीने पहले ही तो उन दोनों ने अपने शादी के पचास वर्ष पूरे किए थे। इतनी जल्दी सरस्वती साथ छोड़ देगी। सोचा भी न था। चलो अच्छा ही रहा। मेरे सामने ही मिट्टी उठ गई। सुहागिन ही पति के कंधों पर चढ़कर चिता तक पहुँचू यह सरस्वती की तमन्ना थी। मेरे बाद पता नहीं बहुएं या लड़के उसके साथ कैसा व्यवहार करते। भागीरथ सोचता और भगवान को धन्यवाद देता।

भागीरथ गांव में ही रहना चाहता था पर लड़के इज्जत का वास्ता देखकर उसे अपने साथ ले ही आए–''आप अकेले कैसे रहोगे? आपकी रोटी कौन बनाएगा? बुढ़ापे में बीमार पड़ गए तो देखभाल कौन करेगा?''–ऐसे-ऐसे दसियों प्रश्न बड़े बेटे ने उछाले थे और उसने निरूतर होकर समर्पण कर दिया था। औने-पौने दामों में गांव का घर बेचकर वह उसके साथ शहर आ गया था और तब से सब्जी और दूध लाने की जिम्मेदारी भी उसने खुद ही अपने कंधों पर ले ली थी। पर यहां आकर उसे लगता कि वह तो और भी अकेला हो गया है। गांव में दस लोग मिलते। दुआ-सलाम होती, देश-विदेश की राजनीति पर चर्चा होती और वक्त कब कट जाता पता नहीं चल पाता। यहां लड़का अपनी नौकरी में व्यस्त, बहू को नौकरी से आने के बाद घर के कामों से फुर्सत नहीं और बच्चे अपने भारी-भरकम होमवर्क में जुटे रहते। आखिर वो बात किससे करे। अखबार को हेडलाइन से लेकर प्रिंट लाइन तक पढ़ लेता पर वक्त फिर भी काटे नहीं कटता।

कुछ दिनों से उसे लग रहा है कि बेटा और बहू उसकी उपस्थिति से असहज से हो उठते हैं। शायद अपनी एडवांस दुनिया में उन्हें भागीरथ ''बैकवर्ड'' लगता है और उसको लेकर उन्हें कुछ काम्पलेक्स सा महसूस होता है। अभी कुछ दिन पहले जब बेटे के दफ्तर से कुछ लोग घर पर आए थे तो वह पाजामा पहने ही उनके बीच जाकर बैठ गया था। वे दोस्त तो सब इज्जत से बात करते रहे पर बेटे का मुंह शर्म और गुस्से से

लाल हो उठा था और उसने अपने मनोभावों से जता दिया था कि पिता की यह हरकत उसे ''नागवार'' गुजरी है।

भागीरथ सोच नहीं पा रहा था कि वह क्या करे। सरस्वती होती तो उससे कहकर अपने मन की भड़ास निकालता। अब यहां शहर में तो सब अजनबी हैं। उसने सीढ़ियां चढ़ते हुए सोचा। यह भी कितनी मुसीबत है शहर में रहने वालों की। न जमीन अपनी न छत अपनी। बीच में लटके रहो। चौथे माले पर पहुंचते-पहुंचते सांस उखड़ने लगती है। घर के दरवाजे पर पहुंचकर वह उखड़ती सांसों पर काबू पाने के लिए रुका। बड़ा बेटा फोन पर बात कर रहा था। शायद छोटे बेटे प्रेम से-''देखो भाई प्रेम मुझे बाबूजी को गांव से लाए छह महीने हो गए है। तुम जानते ही हो शहर में कितने खर्चे होते हैं। बच्चों की फीस ही कितनी बढ़ गई है। अब छह महीने के लिए तुम उन्हें अपने पास ले जाओ।''

भागीरथ के पैर वहीं पत्थर की तरह जम गए। उसे लगा कि उसमें इतनी हिम्मत नहीं है कि दरवाजा खोलकर घर में दाखिल हो जाए। उसने सब्जी का थैला और बाकी बचे पैसे दरवाजे के सामने रखे। परसों जो पेंशन मिली थी वह अभी उसकी जेब में ही थी। उसने घड़ी देखी, साढ़े आठ बजे थे। गांव के लिए ट्रेन 10 बजे छूटती थी। भागीरथ मुड़ा और थके कदमों से स्टेशन की तरफ चल पड़ा।

-हिंदी अधिकारी
भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण,
जी-5 एवं 6, सेक्टर-10 द्वारका,
नई दिल्ली-110075

कल का काला पानी

मंगतराम

कभी नरक था यह द्वीप, नाम था इसका काला पानी।
घने जंगलों से जकड़ा, आदिवासियों की था राजधानी।
खूंखार कैदियों के लिए, यह द्वीप को अंग्रेजों ने ही चुना था।
खुले आकाश के नीचे, यातनाएं झेले ऐसा स्थान चुना था।
देश भक्तों को मौत के घाट सुलाने का, ऐसा सलोना कब्रिस्तान उन्होंने चुना था।
पृथ्वी पर नरक झलकता हो, ऐसा काला जगह अंग्रेजों ने चुना था।
जो मुख्यभूमि से आता था, बेड़ी में जकड़ के ही आता था।
खूंखार आदिवासियों के तीर का शिकार, यह फिर हिंसक पशुओं का आहार बन जाता था।
फिरंगी सरकार के यमदूत यहीं रहते थे, मार-मार कर जालिमों ने देश भक्तों को, मौत के घाट, सुला देते थे।
जो लोग यहां लाए जाते थे, शव यात्रा ही समझ कर आते थे।
घर-परिवार से बिछड़कर, लौटकर अपने वतन को फिर न जा पाते थे।
वक्त गुजरता गया, शहीदों का लहू से धरती लाल होता गया।
मौका पाते ही जापान के यमदूत भी यहां आ टपके।
अपनी क्रूरता का मिशाल, यहां सजा बैठे।
बे रहमी से कोढ़ा, कैदियों पर बरसाते थे।
अपने आप को, इस द्वीप का ईश्वर बतलाते थे।
भारत मां के बेटों का खून उबलता था।
आने वाला समय उन्हें, अपना सा लगता था।
एक महापुरुष का पैर पड़ते ही, यह द्वीप जगमगा उठा।
स्वर्ग का झंडा, यहीं पर लहरा उठा।
चन्द वर्षों में यह द्वीप, नरक से स्वर्ग में बदल गया।
किसी ने इसे जन्नत देखा, कोई इसे तीर्थ स्थान देखा।
सच में तो यह धरती, भारत मां के वीर बेटों का बसेरा है।
शहीदों की लहू से लिखा हुआ, इतिहास का खजाना है।
अपने पूर्वजों को मिलने की आस लिए, मुख्यभूमि से आज भी लोग आते हैं।
उनकी सुगंधित माटी का, तिलक माथे पर लगाकर ही वापस जाते हैं।
कल का काला पानी, आज अमृत का कुंआ बन गया।
स्वर्ग इस धरती पे है, यह पर्यटकों का एक धाम बन गया।
सुभाष का जय हिन्द का नारा, आज भी यहां के हवाओं में गूंजता है।
उनके मुखार बिन्द की वाणी, हिंदुस्तान के हर प्रांत में गूंजता है।
नारा जय हिंद का एक पैगाम है मेरा
इसे कलेजे से लगा लेना ये निशान है मेरा
सिपाही रहूं वतन का बनकर, यह इम्तहान है मेरा
मैं रहूं या न रहूं, आजाद रहे हिंदुस्तान मेरा।

–कार्यालय अधीक्षक,
श्री तुकाराम मार्केट डेरी फार्म,
जंक्सन पोर्ट ब्लेयर अण्डमान-744103

कविता एक यात्रा

महेन्द्र सिंह दयाल

शब्दों को शब्दों से जोड़कर देखा तो
बनती है कविता सोचकर देखा जो
मन की वीणा पर भावों के तारों से
बजता है संगीत मैंने छेड़कर देखा जो
जीवन के तबले पर नियति की थापों से
व्यक्ति के मानस पर स्थितियों की तानों से
गढ़ते हैं गीत मैंने सुनकर देखा जो
अनुभूति के अंकुर से फूटती हैं कविताएं
अभिव्यक्ति की खादों को डालकर देखा जो
कल्पनाओं के चिंतन संग प्रणय से लेकर
कामना और स्वप्न के आलिंगन से लेकर
छंदों के जन्म तक कविता है यात्रा
मैंने इन गलियों से गुजर कर देखा जो।

–कनिष्ठ हिंदी अनुवादक,
हिंदी अनुभाग,
महिला एवं बाल विकास मंत्रालय,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली

पिछली हिन्दी सलाहकर समिति के सदस्यों के पते

माननीय राज्य मंत्री (पोत परिवहन, सड़क परिवहन और राजमार्ग) की अध्यक्षता में सड़क परिवहन और राजमार्ग विभाग की हिन्दी सलाहार समिति का पुनर्गठन 27 जून, 2005 को हुआ था । इस समिति में सरकारी और गैर सरकारी सदस्य होते हैं और गैर सरकारी सदस्यों की संख्या 15 होती है । उक्त समिति में शामिल **गैर सरकारी सदस्यों** के पते आदि नीचे दिए गए हैं :–

1. श्री विष्णु देव साय, संसद सदस्य (लोक सभा)
   स्थाई पता – गांव बगिया, डाकघर बंदर चूहां,
   तहसील-बगीचा, जिला जशपुर, छत्तीसगढ़-496331

   स्थानीय पता – 70 नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली-110001.

2. डा. (कर्नल) धनीराम शांडिल्य, संसद सदस्य (लोक सभा)

   स्थाई पता – इंदिरा कॉटेज, समर हिल,
   शिमला-171005 (हिमाचल)

   स्थानीय पता – बी-301, एम एस फ्लैटस,
   बाबा खड़ग सिंह मार्ग, नई दिल्ली-110001.

3. श्री टी.जी. बालाकृष्णन पिल्लै, संसद सदस्य (राज्य सभा)
   स्थाई पता – अम्बाड़ी, यमुना नगर,
   पी ओ कराकुलम, तिरूवंतपुरम, केरल

   स्थानीय पता – 102 ब्रह्मपुत्र, बी.डी. मार्ग, नई दिल्ली-110001.

4. श्री नारायण सिंह केसरी, संसद सदस्य (राज्य सभा)
   स्थाई पता – 293/4, यशवंतगंज, 12 कच्छविला भवन,
   सुभाष मार्ग, एम जी रोड, इंदौर (मध्य प्रदेश)

   स्थानीय पता – 53–55, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली-110001.

5. डा. धीरेन्द्र अग्रवाल, संसद सदस्य (लोक सभा)
   स्थाई पता – 187, अनुग्रह पुरी कॉलोनी, गया-823001 (बिहार)

   स्थानीय पता – 11ए, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110001.

6. प्रो. राम देव भंडारी, संसद सदस्य (राज्य सभा)
   स्थाई पता – ग्राम व डाकघर-झंझारपुर,
   जिला मधुबनी, बिहार-847404

   स्थानीय पता – 24, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली-110011.

7. श्री गोपाल कृष्ण फरलिया,
आवासीय पता – डी-II/2205, वसन्त कुंज, नई दिल्ली-110070.
दूरभाष : 011-26891067 (आवास)

8. प्रो. अनन्तराम त्रिपाठी,
प्रधानमंत्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
आवासीय पता – हिन्दी नगर, वर्धा–442 003 (महाराष्ट्र)
दूरभाष : 07152-246044 (कार्यालय)
07152–240128 (आवास)

9. पंडित दयानन्द शुक्ला,
स्थानीय पता – डी-144-145, पप्पनकलां, सेक्टर-1,
द्वारका, नई दिल्ली-110075

स्थायी पता – ग्राम-नौगवा डीह, पोस्ट, देवईथ,
जनपद-बाराबंकी, उत्तर प्रदेश

10. श्री नारायण जी मोहनराव गलांडे (पाटील),
आवासीय पता – एस. नं.-21/3, कृष्णानगर, सैनिक वाडी,
कल्याणी नगर एनेक्सी, वडगांव शेरी,
पुणे-411014 (महाराष्ट्र)

11. श्री महेन्द्र एच. सिंघी,
आवासीय पता – पहली मंजिल, एस. के. बिलिडिंग,
काप्पिकर रोड, हुबली-580020 (कर्नाटक)

12. डा. (श्रीमती) पदमजा देवी, प्रोफेसर (हिन्दी)
आवासीय पता – मकान नं. 24, रीडर्स कालोनी,
प्रकाश नगर-एस.वी. विद्यालय,
तिरुपति, आंध्र प्रदेश ।

13. श्री बेकल उत्साही,
आवासीय पता – 'गीतांज', सिविल लाइन,
बलरामपुर-271201 (उत्तर प्रदेश)

14. डा. रामचन्द्र अर्जुन माली,
आवासीय पता – 43/2, मंगलदास पार्क,
नवापुर, जिला नंदूरबार-425418

15. श्रीमती जरीना,
स्थानीय पता – 1778, दूसरा तल, हौज सुईवालान,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

स्थायी पता – मोहल्ला मीरा चबूतरा,
ग्राम-सेवाइत, जिला इलाहाबाद, (उत्तर प्रदेश)
पिन कोड-212503

समिति की बैठकें

इस समिति का कार्यकाल तीन वर्ष अर्थात् दिनांक 27 जून, 2005 से 26 जून, 2008 तक रहा । इस अवधि के दौरान हिन्दी सलाहकार समिति की दिल्ली और दिल्ली के बाहर सात बैठकें निम्न स्थलों पर आयोजित की गई :–

हिन्दी सलाहकार की आयोजित की गई बैठकें

क्रम संख्या	बैठक की तिथि	बैठक स्थल
1.	03-10-2005	वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
2.	06-03-2006	नई दिल्ली
3.	16-06-2005	मैसूर (कर्नाटक)
4.	09-11-2006	नई दिल्ली
5.	05-10-2007	कोझीकोड (केरल)
6.	05-01-2008	गोवा
7.	20-06-2008	नई दिल्ली

सत्यमेव जयते

सड़क परिवहन और राजमार्ग विभाग
पोत परिवहन, सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड़, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित।